मन्त्रजप की विधि एवं तत्संबंधी नियम

'मन्त्र-साधना एवं सिद्धि' तथा 'जपमाला और उसके संस्कार' वाले अध्यायों में मन्त्र-जप संबंधी कई मुख्य बातों का उल्लेख हो चुका है। फिर भी कुछ सामान्य बातें रह गयीं हैं जिनकी चर्चा आवश्यक जान पड़ती है। इसीलिये हम यहाँ पर उनकी चर्चा करेंगे। इस अध्याय को उक्त अध्यायों के साथ ही पढ़ें। इस चर्चा में कुछ पहले की बातें दुबारा भी आ सकती हैं। अतः पाठकों से निवेदन है कि वे पुनरावृत्ति के लिये लेखक को क्षमा करेंगे। जिस प्रकार पूजा संक्षिप्त एवं विस्तृतरूप से की जाती है उसी प्रकार जप भी संक्षिप्त या विस्तृत विधि से किया जाता है।

उपयुक्त स्थान पर, उपयुक्त आसन पर तथा उपयुक्त दिशा में बैठकर पहले आसनशुद्धि करके मन्त्र-जप का संकल्प (देश-काल के उच्चारणपूर्वक) लेना चाहिये। उपयुक्त स्थान जैसे मंदिर या एकान्त स्थान, जिसकी चर्चा अन्य लेख में हो चुकी है, में पूर्व या उत्तर दिशा में जप के लिये बैठना चाहिये। आमतौर पर कुश, कम्बल, मृगचर्म, व्याघ्रचर्म और रेशम आदि का आसन जप के लिये प्रयोग करना चाहिये।

कौशेयं कम्बलं चैव अजिनं पट्टमेव च।
दारुजं तालपत्रं वा आसनं परिकल्पयेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 79)

बाँस, मिट्टी, पत्थर, तृण, पत्ते, गोबर, पलाश, पीपल और जिसमें लोहे की कील लगी हो, ऐसे आसन पर नहीं बैठना चाहिये। क्योंकि शास्त्र का वचन है कि-

वंशासनेषु दारिद्र्यं पाषाणे व्याधिजं भयम्।
धरण्यां दुःखसंभूतिर्दौर्भाग्यं छिद्रदारुजे।।
तृणे धनयशोहानिः पल्लवे चित्तविभ्रमः।
गोशकृन्मृन्मयं भिन्नं तथा पालाशपिप्पलम्।
लोहबद्धं सदैवाऽऽर्कं वर्जयेदासनं बुधः।। (आचारेन्दुः पृ. 80)

इसी प्रकार सन्तानवान् गृहस्थ को मृगचर्म के आसन पर भी नहीं बैठना चाहिये।

मृगचर्म प्रयत्नेन वर्जयेत्पुत्रवान्गृही।। (आचारेन्दुः पृ. 80)

अभिचार कर्म के लिये किये जानेवाले जप के लिये नीलवर्ण का, वशीकरण के लिये लाल रंग का तथा शान्ति के लिये किये जानेवाले जप में कम्बल का आसन उपयुक्त माना गया है। जबकि सभी प्रकार की कामनाओं के लिये बहुरंगी कम्बल उपयोगी माना जाता है।

अभिचारे नीलवर्णं रक्तं वश्यादिकर्मणि।
शान्तिके कम्बलः प्रोक्तः सर्वेष्टं चित्रकम्बले।।

(आचारेन्दुः पृ. 80 तथा मामूली अन्तर के साथ अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 3 पर)

आसनशुद्धि के लिये आसन पर जल छिड़कर उसकी पूजा के उपरान्त जप शुरू करना चाहिये।

आसनं प्रोक्ष्य संपूज्य जपं तत्र समाचरेत्। (आचारेन्दुः पृ. 123)

आसन को पवित्र करने के लिये निम्नलिखित तरीके से विनियोगवाक्य पढ़कर उसकी पूजा करें।

'ॐ पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठऋषिः, कूर्मो देवता, सुतलं छन्दः आसन-पवित्रकरणे विनियोगः।'

इस वाक्य को पढ़ने के बाद नीचे लिखा मन्त्र पढ़कर आसन पर जल छिड़कें -

ॐ पृथ्वि! त्वया धृता लोका देवि! त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि! पवित्रं कुरु चासनम्।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 63)

जप, होम तथा उपवास में धुले वस्त्र पहनने चाहिये।[1] उन वस्त्रों को मलिन, नीलवर्ण का तथा जीर्ण नहीं होना चाहिये।[2]

देवकर्म (जप, होम, संध्या तथा पूजादि) एवं पितृकर्म के लिये कपास के वस्त्र जो दो दिन पहले धुले हों उन्हें शुद्ध जानना चाहिये। अन्यथा उसे पानी से धोने पर शुद्ध माना जायगा। परन्तु रेशमी वस्त्र एवं कम्बल को आठ दिन बाद धोया जा सकता है। अर्थात् सूती वस्त्र को प्रतिदिन धोना चाहिये जबकि कम्बल एवं रेशम के वस्त्रों को आठ दिन प्रयोग के बाद धोना चाहिये।

पूर्वेऽह्नि धौतं कार्पासं दैवे पित्र्ये च कर्मणि।
ग्राह्यं शुद्धं विजानीयात्तदन्यत्क्षालनाच्छुचि।।
पट्टवस्त्रं कम्बलं च धौतमष्टदिनावधि।
शुद्धं तदन्यथाऽशुद्धं पुनः प्रक्षालनाच्छुचि।। (आचारेन्दुः पृ. 59)

कमर में लिपटे हुए जिस वस्त्र के साथ मूत्र-मलत्याग एवं मैथुनादि क्रियायें की गयी हों उसे नहीं पहनना चाहिये। इसी प्रकार उपर्युक्त कर्मों के लिये जला हुआ, जीर्ण, मलिन, चूहे द्वारा काटा गया तथा गाय और भैसों द्वारा चबाया गया वस्त्र धारण नहीं करना चाहिये।

कटिस्पृष्टं च यद्वस्त्रं पुरीषं येन कारितम्।
मैथुनं मेहनं वाऽपि तद्वस्त्रं परिवर्जयेत्।।
दग्धं जीर्णं च मलिनं मूषकोपहतं तथा।

---

1. **'जपहोमोपवासेषु धौतवस्त्रधरो भवेत्।'** (वीरमित्रोदयः अह्निकप्रकाशः पृ. 323)
2. **'न जीर्णेन न नीलेन परिक्लिष्टेन वा जपेत्।'** (वही, पृ. 323)

खादितं गोमहिष्याद्यैस्तत्त्याज्यं सर्वथा द्विजैः।। (आचारेन्दुः पृ. 60)

इसी प्रकार जिस वस्त्र को पहन कर रात्रि में सोया जाय अथवा भोजन किया जाय वह भी अशुद्ध हो जाता है। उसका प्रयोग नहीं करना चाहिये। वे वस्त्र धोने पर शुद्ध होते हैं। परन्तु रेशमी वस्त्र इन सभी स्थितियों में भी शुद्ध बने रहते हैं।

भोजनं च मलोत्सर्गं कुरुते त्रसरावृतः।
प्रक्षाल्य त्रसरं शुद्धं दुकूलं च सदा शुचि।। (आचारेन्दुः पृ. 61)

पुनः मल, मूत्र, शव तथा वीर्य आदि छू जाने पर भी रेशमी वस्त्र सदैव पवित्र रहते हैं। परन्तु इन वस्तुओं के वस्त्र में लग जाने पर धोने के उपरान्त ही शुद्ध होंगे। अर्थात् रेशमी तथा ऊनी वस्त्र वायु के झोंके से शव, सूखे हुए मल मूत्रादि से छू जाय तो भी वह पवित्र बना रहता है। जबकि गीले मल-मूत्र आदि के स्पर्श होने पर ये अशुद्ध पदार्थ वस्त्र में चिपक जायँगे फलस्वरूप ऐसे वस्त्र धोने पर ही शुद्ध हो सकेंगे।

रेतः स्पृष्टं शवस्पृष्टं स्पृष्टं मूत्रपूरीषयोः।
वाताहतं क्षौमवस्त्रमाविकं च सदा शुचि।। (आचारेन्दुः पृ. 61)

रेशमी वस्त्र की ही भाँति ऊन के वस्त्र भी सदैव शुद्ध माने गये हैं।

आविकं तु सदा वस्त्रं पवित्रं राजसत्तम।
पितृदेवमनुष्याणां क्रियायां च प्रशस्यते।।
धौताधौतं तथा दग्धंसन्धितं रजकाहृतम्।
रक्तमूत्रशकृल्लिप्तं तथापि परमं शुचि।।
रेतः स्पृष्टं रजः स्पृष्टं स्पृष्टं मूत्रपुरीषयोः।
रजस्वलाभिसंस्पृष्टमाविकं सर्वदा शुचि।। (वीरमित्रो. आह्निकप्रकाशः पृ. 248)

अर्थात् – ऊन के वस्त्र सदा पवित्र रहते हैं तथा वे पितृ, देवता आदि सभी कर्मों के लिये उत्तम हैं। ऊनी वस्त्र चाहे धुला हो या न धुला हो, जला हुआ हो, सिला हुआ हो, धोबी द्वारा धोया गया हो, रक्त, मूत्र आदि से लिप्त हो तब भी वह शुद्ध बना रहता है। रेत, रज, मल-मूत्र तथा रजस्वला आदि से स्पर्श होने पर भी वह शुद्ध बना रहता है।

विद्वान् पुरुष धोबी द्वारा धोये वस्त्र को अशुद्ध मानते हैं। उन्हें अपने हाथ से पुनः धोने पर ही शुद्ध माने जाते हैं।

रजकैः क्षालितं वस्त्रशुद्धं कवयो विदुः।
हस्तप्रक्षालनेनैव पुनर्वस्त्रं च शुद्ध्यति।। (पद्मपुराण, सृष्टिखण्ड 46/53)

इसी प्रकार गीले वस्त्र पहन कर भी जप नहीं करना चाहिये।[1] जप या तो नित्यकर्म के रूप में

1. **आर्द्रवासाश्च यः कुर्याज्जपहोमं प्रतिग्रहम्।**
सर्वं तद्राक्षसं विद्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम्।। (वीरमित्रोदयः अहिनकप्र., पृ. 323)
सूखे वस्त्र के अभाव में गीले वस्त्र को सात बार हवा में फटकार देने से उसे सूखे वस्त्र के समान मान लिया जाता है।
सप्तवाताहतं चाऽऽर्द्रं शुष्कवत्प्रतिपादयेत्। (आचारेन्दुः पृ. 62)

किया जाता है अथवा किसी कामनाविशेष की पूर्ति के लिये अथवा पुरश्चरण के रूप में। कामनाविशेष के लिये या पुरश्चरणपूर्वक जपवाले संकल्पों के स्वरूप में थोड़ा अन्तर होता है। जिस कामनाविशेष के लिये संकल्प लेना होता है उसका उल्लेख संकल्पवाक्य में करना होता है। पहले दिन जितनी मात्रा में जप का संकल्प किया जाय, उतना ही जप प्रतिदिन होना चाहिये। उसे कम या ज्यादा नहीं करना चाहिये।

जप करने के लिये अर्द्धपद्मासन या स्वस्तिकासन उत्तम माना गया है। (आचारेन्दुः पृ. 80) परन्तु व्यक्ति को जिस आसन में सुगमता हो उसे वही अपनाना चाहिये। जप बिना गणना के नहीं करना चाहिये। (**'असंख्यातं तु यज्जप्तं तत्सर्वं स्यान्निरर्थकम्।'** आचारेन्दुः पृ. 83)।[1] जप की गणना माला से करना उत्तम होता है। जपमालाओं के बारे में अलग से विचार किया जा चुका है, अतः यहाँ पर उसकी पुनरावृत्ति नहीं की जायगी। मणिमाला के अभाव में करमाला का प्रयोग किया जाता है। जप के माला की गणना चन्दन, अक्षत, पुष्प, धान्य, हाथ के पोर (गाठों) और मिट्टी से न करें।

नाक्षतैर्हस्तपर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः।
न चन्दनैर्मृत्तिकया जपसंख्यां तु कारयेत्।।

(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश गीताप्रेस पृ. 45)

'आचारेन्दुः' में भी गणना के लिये उपर्युक्त पदार्थों को वर्जित स्वीकार किया गया है परन्तु चन्दन को छोड़कर। वहाँ पर 'चन्दन' की जगह 'फल' को सम्मिलित किया गया है।

नाक्षतैर्न च पर्वैर्वा न धान्यैर्न च पुष्पकैः।
न मृन्मयैः फलैर्वाऽपि जपसंख्यां न कारयेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 131)

'नित्यकर्म-पूजाप्रकाश (पृ. 45) में बताया गया है कि जप की गणना के लिये लाख, कुश, सिन्दूर और सूखे गोबर को मिलाकर गोलियाँ बना लें। परन्तु 'आचारेन्दुः' में उपर्युक्त चार पदार्थों के साथ पाँचवां चन्दन को भी जोड़ दिया गया है।

लाक्षाकुसीदं सिन्दूरं चन्दनं च करीषकम्।
संमेल्य गुटिकां कृत्वा जपसंख्यां तु कारयेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 131)

उपर्युक्त उद्धरणों में 'चन्दन' को लेकर जो विवादास्पद स्थिति है उसमें आम व्यक्ति को भ्रमित होने की आवश्यकता नहीं है। उसे सफेद 'चन्दन' एवं 'फल' दोनों का ही प्रयोग जपमाला की संख्या की गणना में नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार जप की गिनती के लिये गोलियाँ बनाने में उसे सफेद चन्दन की जगह लाल चन्दन का प्रयोग करना चाहिये।

जप के लिये निम्न क्रम का प्रयोग करना चाहिये। पवित्र या एकान्त स्थान पर कम्बल आदि

1. **यथाशक्ति जपं कुर्यात्सङ्ख्ययैव प्रयत्नतः।**
असङ्ख्यातं च यज्जप्तं यस्मात्तन्निष्फलं भवेत्।। (वीरमित्रोदयः अह्निकप्र. पृ. 327)

उपयुक्त आसन पर पूर्व या उत्तरमुख स्वस्तिक आदि आसन पर बैठ कर आचमन एवं तीन प्राणायाम कर देश-काल का उल्लेख करते हुए जिस मन्त्र का जप या पुरश्चरण करना हो तथा जिस निमित्त करना हो तथा जितनी मात्रा में करना हो उसका संकल्प करे। उदाहरण के लिये नवार्ण-जप करनेवाला इस प्रकार संकल्प कर सकता है। **'.....श्रीमहाकालीमहालक्ष्मीमहासरस्वत्यात्मक-चण्डिकाप्रीतिद्वारा सर्वाभीष्टसिद्धयर्थं अमुकसंख्याकं नवार्णजपं करिष्ये।'** उपर्युक्त संकल्प में 'सभी प्रकार की कामनाओं की सिद्धि ही जप का लक्ष्य बताया गया है। जिसका जो लक्ष्य हो उसका उल्लेख वहाँ पर करना चाहिये।

संकल्प के उपरान्त मन्त्र के ऋषि, छन्द एवं देवता आदि का उल्लेख करते हुए उसके विनियोग का अर्थात् प्रयोजन का उल्लेख करना चाहिये। क्योंकि कहा गया है कि-

ऋषिच्छन्दोदेवतानां विन्यासेन विना यदा।
जपः संसाधितोऽप्येष तत्र तुच्छफलं भवेत्।।[1] (आचारेन्दुः पृ. 124)

अर्थात् मन्त्रों के ऋषि, छन्द एवं विनियोग आदि के उल्लेख के बिना जप तुच्छ फल देनेवाले होते हैं।

विनियोग के पश्चात् मन्त्र के ऋषि आदि का न्यास, अंगन्यास तथा करन्यास इत्यादि विविध प्रकार के यथासंभव न्यासों[2] को करना चाहिये। न्यास के बाद मन्त्र के देवता का ध्यान कर उसकी पंचोपचार से मानसिक अथवा बाह्य पूजा करें। जपमाला को किसी पात्र में रखकर उसका शुद्ध जल से जप किये जानेवाले मन्त्र द्वारा प्रोक्षण करना चाहिये। तदनन्तर माला की इस प्रकार प्रार्थना करें-

ॐ मां माले महामाये सर्वशक्तिस्वरूपिणि।
चतुर्वर्गस्त्वयि न्यस्तस्तस्मान्मे सिद्धिदा भव।।

(आचारेन्दुः पृ. 129 तथा वीरमि. आह्नि. पृ. 327)

इस प्रर्थना के बाद **'ह्रीं सिद्धयै नमः'** इस मन्त्र को पढ़े तथा माला की गंधादि पंचोपचार से पूजा करे। पूजा के अनन्तर निम्न प्रार्थना करे -

गं अविघ्नं कुरु माले त्वं गृह्णामि दक्षिणे करे।
जपकाले तु सततं प्रसीद मम सिद्धये।। (आचारेन्दुः पृ. 133)

इस प्रार्थना को करने के बाद माला को दाहिने हाथ में (हृदय के पास) लेकर देवी का

---

1. पुरश्चर्यार्णव (पृ. 184) में भी कहा गया है कि-
ऋषिच्छन्दोऽपरिज्ञानान्न मन्त्रफलभाग्भवेत्।

2. संक्षिप्त एवं विस्तार के भेद से अनेक प्रकार के न्यास किये जाते हैं। संक्षेप में ऋषि आदि का षडंगन्यास, हृदयादि षडंगन्यास तथा करन्यास प्रसिद्ध हैं। इनके अलावा अनेक प्रकार के न्यास होते हैं जैसे मातृकान्यास, श्रीकण्ठादिकलान्यास। कहीं-कहीं पर दस प्रकार के न्यासों का प्रयोग होता है। संक्षिप्त न्यास में ऋषि आदि के षडंग न्यास, हृदयादिषडंगन्यास एवं करन्यास ही आते हैं। आमतौर पर इनका ही प्रयोग होता है।

निम्न रूप से ध्यान करने के पश्चात् जप करे।

महासरस्वति चित्ते महालक्ष्मि सदात्मिके।
महाकाल्यानन्दरूपे त्वत्तत्त्वज्ञानसिद्धये।।
अनुसंदध्महे चण्डि वयं त्वां हृदयाम्बुजे। (आचारेन्दुः पृ. 134)

उपर्युक्त रीति से देवी का चिन्तन कर इष्टमंत्र का जप करे। इष्ट संख्या में जप करने के बाद निम्न मन्त्र से माला की प्रार्थना करे।

ॐ त्वं माले सर्वदेवानां प्रीतिदा शुभदा भव।
शिवं कुरुष्व मे भद्रे यशो वीर्यं च सर्वदा।। (आचारेन्दुः पृ. 134)

तदनन्तर **'ह्रीं सिद्धयै नमः'** माला के इस मन्त्र को पढ़ माला को सिर से लगाकर उसे गुप्त स्थान पर रख देना चाहिये। इसके पश्चात् (अन्त में) तीन प्राणायाम एवं आचमन कर जप को अपने इष्ट को समर्पित कर देना चाहिये।[1]

देवीमन्त्र को देवी के बायें हाथ में तथा देवमन्त्र को देवता के दाहिने हाथ में समर्पित करना चाहिये। इसके पश्चात् स्तुति का पाठ करके अन्त में जिस कामना के निमित्त जप किया जा रहा हो उसका निवेदन करना चाहिये।

जप्त्वा मालां शिरोदेशे प्रांशु स्थानेऽथ वा न्यसेत्।।
स्तुतिपाठं ततः कुर्यादिष्टकामं निवेद्य च।

(कालिकापु., संस्कृति संस्थान बरेली, 2/12/36-37)

जपसंबंधी नियम

प्रातःकाल में किये जानेवाले जप को दोनों हाथों को उत्तानकर, सायंकाल को नीचे की ओर करके और दोपहर को सीधा करके जपना चाहिये। इस प्रकार का नियम करमाला के सन्दर्भ में है।

कृत्वोत्तानौ करौ प्रातः सायं चाधोमुखौ करौ।
मध्ये संमुखहस्ताभ्यां जप एवमुदाहृतः।। (आचारेन्दुः पृ. 83)

---

1. जप समाप्त करने के बाद माला को सिर से स्पर्श कराकर रख देना चाहिये तथा अर्घ्यपात्र से हाथ पर थोड़ा जल लेकर निम्न मन्त्र को पढ़ते हुए देवता के दाहिने हाथ में इस प्रकार की भावना द्वारा अर्पित करें मानो वह जप का फल हो।

समाप्ते तु जपे मालां निदध्यान्मस्तकोपरि।
अर्घपात्राज्जलं हस्ते गृहीत्वेदं पठेत् ततः।।
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम्।
सिद्धिर्भवतु मे देव त्वत्प्रसादाज्जगत्पते।।
देवस्य दक्षिणे हस्ते तोयं दत्वा समर्पयेत्। (पुरश्चर्यार्णव पृ. 258)

प्रात:काल हाथ को नाभि के पास, दोपहर में हृदय के पास और सांयकाल नासिका के समानान्तर रखकर जप करे।

प्रातर्नाभौ करौ धृत्वा मध्याह्ने हृदि संस्थितौ।
सायं जपस्तु नासाग्रे त्रिसंध्यं जपलक्षणम्।। (आचारेन्दु: पृ. 82)

वस्त्र से ढककर अथवा गोमुखी[1] में रखकर दाहिने हाथ से माला का जप करना चाहिये। क्योंकि प्रकट माला के जप के फल को भूत, राक्षस, सिद्ध आदि हर लेते हैं। अत: प्रकट जप का अल्प फल होता है।

वस्त्रेणाच्छादितकरं दक्षिणं य: सदा जपेत्।
तस्य स्यात्सफलं जाप्यं तद्धीनमफलं स्मृतम्।।
भूतराक्षसवेतालाः सिद्धगन्धर्वचारणाः।
हरन्ति प्रकटं यस्मात्तस्याद्गुप्तं जपेत्सुधीः।। (अनुष्ठानप्रकाश: पृ. 4-5)

जपमाला को कपड़े या गोमुखी से ढकें तो इस बात का ध्यान रहे कि वे सूखे हों। क्योंकि गीले कपड़े से ढककर किया गया जप निष्फल होता है।

आच्छाद्यार्द्रेण वस्त्रेण करं यस्तु जपेद् यदि।
निष्फलः स्याज्जपस्तस्य देवता न प्रसीदति।।

(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश, गीताप्रेस, पृ. 45)

यदि किसी कारणवश ढकने के लिये स्वच्छ एवं सूखा वस्त्र न मिल सके तो गीले वस्त्र को सात बार हवा में फटकारकर प्रयोग करें। ऐसा करने पर उसे सूखे कपड़े जैसा मान लिया जाता है।

तदपि पूर्वपरिधानीयवत् सप्तवारमवधूनितं चेन्न दोषावहम्।

(नित्यकर्म-पूजाप्रकाश, पृ. 45)

जप करते समय माला को कोई भी न देखे यहाँतक कि गुरु भी नहीं। क्योंकि दूसरों की दृष्टि पड़ने पर जपकर्म निष्फल हो जाता है।

परदृष्टिगता माला निष्फला जपकर्मणि।।
जपकालेऽक्षमालां तु गुरवेऽपि न दर्शयेत्। (आचारेन्दु: पृ. 128)

माला को दाहिने हाथ की मध्यमा अँगुली के बीच में(अर्थात् मध्य पोर पर) तर्जनी को बचाते हुए रखकर तथा अनामिका एवं कनिष्ठा को मध्यमा के ठीक नीचे रखते हुए अगूँठे के अग्रभाग से मणियों को आगे की ओर सरकायें और सुमेरु पर पहुँचकर माला को पुन: उलट लें। कभी भी मेरु का उल्लंघन नहीं करना चाहिये।

पूजयित्वा ततो मालां गृह्णीयाद्दक्षिण करे।

---

1. गाय के मुख की भाँति कपड़े को सिलकर गोमुखी बनायी जाती है। इसमें माला डालकर जप किया जाता है।

मध्यमाया मध्यभागे वर्ज्जयित्वा च तर्जनीम्।।
अनामिकाकनिष्ठाभ्यां युतायां नम्रमागतः।
स्थापयित्वा तत्र मालामङ्गुष्ठाग्रेण तद्गताम्।।(वीरमित्रो. आह्निकप्र. पृ. 327)
जपकाले सदा विद्वान्मेरुं नैव विलङ्घयेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 129)

माला को अनामिका अँगुली पर रखकर अँगूठे से स्पर्श करते हुए मध्यमा अँगुली से भी फेरा जा सकता है। जप में तर्जनी का स्पर्श निषिद्ध है। इसी प्रकार अनामिका अँगुली के मध्य में माला रखकर अँगूठे से फेरा जा सकता है।

अँगुलियों के अग्रभाग तथा पर्व की रेखाओं पर और सुमेरु का उल्लंघन कर किया हुआ जप निष्फल होता है।

अङ्गुल्यग्रे च यज्जप्तं यज्जप्तं मेरुलङ्घने।
पर्वसंधिषु यज्जप्तं तत्सर्व्वं निष्फलं भवेत्।।

(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 5 तथा आचारेन्दुः पृ. 126)

जिस स्थान पर जप किया जाता है, उस स्थान की मिट्टी को जप के बाद अपने मस्तक पर लगाना चाहिये अन्यथा उस जप के फल को इन्द्र हर लेते हैं।

यस्मिन् स्थाने जपं कुर्याद्धरेच्छक्रो न तत्फलम्।
तन्मृदा लक्ष्म कुर्वीत ललाटे तिलकाकृतिम्।। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 46)

जपमाला को बायें हाथ से स्पर्श नहीं करना चाहिये और न ही उसे हाथ, शिर एवं गले में धारण करना चाहिये। जपकाल में उससे जप करना चाहिये। पश्चात् उसे शुद्ध स्थान में छिपाकर रख देना चाहिये।

स्वयं वामेन हस्तेन जपमालां न संस्पृशेत्।।
न धारयेत्करे मूर्ध्नि कण्ठे च जपमालिकाम्।।
जप काले जपं कृत्वा सदा शुद्धस्थले न्यसेत्। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 4)

अपने द्वारा गूँथी हुई माला का जप में प्रयोग नहीं करना चाहिये क्योंकि उसके द्वारा किये गये जप का फल इन्द्र हर लेते हैं।

स्वयंग्रन्थितमाला तु शक्रस्यापि श्रियं हरेत्। (आचारेन्दुः पृ. 127)

संस्कारित माला से मन्त्र जपने से शीघ्र सिद्धि प्राप्त होती है। जिस मन्त्र के जप के लिये माला का संस्कार किया जाता है, उस माला से उसी मन्त्र का जप किया जाना चाहिये।

शिवमन्त्र के लिये संस्कारित माला से शक्तिमन्त्र का तथा शक्तिमन्त्र हेतु संस्कारित माला से शिवमन्त्र का जप हो सकता है।

यन्मन्त्रस्य जपाद्यर्थं सा(या) माला संस्कृता त्तु(त) या।
तन्मन्त्रस्यैव कुर्वीत जपं नान्यस्य कस्यचित्।

शिवमन्त्रेण संग्रथ्य शक्तिमन्त्रं जपेदपि।।

शक्तिमन्त्रेण संग्रथ्य शिवमन्त्र जपेच्छिवे। (आचारेन्दुः पृ. 128)

जप के समय अपवित्र का दर्शन हो जाय तो प्राणायाम करके शेष जप को पूरा करना चाहिये। अगर मन्त्रजापक स्वयं अशुद्ध हो जाय तो उसे पुनः स्नान, आचमन तथा न्यास आदि पूर्ववत् करके जप करना चाहिये।

जपकाले यदा पश्येदशुचिं मन्त्रवित्तमः।

प्राणायामं ततः कृत्वा जपशेषं समापयेत्।।

यदा चैव भवेन्मन्त्री स्वयमेवाशुचिः पुनः।

स्नात्वाऽऽचम्य यथापूर्वं न्यासं कृत्वा जपेदिति।। (आचारेन्दुः पृ. 130)

यदि जप करते समय माला हाथ से गिर जाय तो एक सौ आठ बार जप अलग से प्रायश्चित्तस्वरूप करे। इसी प्रकार यदि माला पैर पर गिर जाय तो उसे धोकर दुगुना(अर्थात् दो माला) जप प्रायश्चित्तस्वरूप करे।

प्रमादात् पतिते सूत्रे जपेदष्ठोत्तरं शतम्।

पादयोः पतिते तस्मिन् प्रक्षाल्य द्विगुणं जपेत् (नित्यकर्म-पूजाप्र. पृ. 46)

बिना आसन के बैठकर, सोकर, चलते-चलते अथवा खड़ा होकर जप न करे। गली में या सड़क पर, अपवित्र स्थान में तथा अँधेरे में भी जप न करे। दोनों पाँव फैलाकर, कुक्कुट आसन से बैठकर, सवारी या खाट पर चढ़कर अथवा चिन्ता से व्याकुल होकर जप न करे। यदि शक्ति हो तो इन सब नियमों का पालन करते हुए जप करे और अशक्त पुरुष यथाशक्ति जप करे। संक्षेप में सदाचारी मनुष्य शुद्धभाव से जप और ध्यान करके कल्याण का भागी होता है।(शिवपुराण वायवीय सं. उ. ख. अ. 14/51-54)

मन्त्रों के पुरश्चरण के लिये कार्तिक, आश्विन, वैशाख, माघ, मार्गशीर्ष, फाल्गुन तथा श्रावण मास अच्छा माना गया है।

कार्तिकाश्विनवैशाखमाघेऽथ मार्गशीर्षके।

फाल्गुने श्रावणे मन्त्रपुरश्चर्य्या प्रशस्यते।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 1)

मुक्ति की इच्छा से किये जानेवाले जप के लिये कृष्णपक्ष तथा विभूति की इच्छायुक्त जप के लिये शुक्लपक्ष अच्छा रहता है(**'मुक्तिकामैः कृष्णपक्षे भूतिकामैः सिते सदा।'** अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 1)। पूर्णिमा, पंचमी, द्वितीया, सप्तमी, त्रयोदशी तथा दशमी तिथि सभी कार्यों के लिये शुभ है। या जो तिथि जिस देवता की है[1] उस देवता के निमित्त किये जानेवाले जप के लिये

1. प्रतिपदा का स्वामी अग्नि, द्वितीया का ब्रह्मा, तृतीया का गौरी, चतुर्थी का गणेश, पंचमी का शेषनाग, षष्ठी का कार्तिकेय, सप्तमी का सूर्य, अष्टमी और चतुर्दशी का शिव, नवमी का दुर्गा, दशमी का काल, एकादशी का विश्वेदेव, द्वादशी का विष्णु, त्रयोदशी का काम, पौर्णमासी का चन्द्रमा और अमावस्या के पितर माने गये हैं।

वही शुभ है।

पूर्णिमा पञ्चमी चैव द्वितीया सप्तमी तथा।
त्रयोदशी च दशमी प्रशस्ता सर्वकामदा।।
या तिथिर्यस्य देवस्य तस्यां वा शुभदः स्मृतः।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 1)

मन्त्रारम्भ रवि, शुक्र, बुध एवं बृहस्पतिवार को ठीक माना गया है। सोमवार को शुरू किये जानेवाला जप मध्यम फल देनेवाला कहा गया है। इसी प्रकार मेष, मिथुन, कर्क, कन्या, तुला, मकर, कुम्भ एवं वृश्चिक राशियाँ जपारम्भ के लिये उपयुक्त हैं। पुनर्वसु के दो चरण, स्वाती, तीनों उत्तरा, श्रावण के तीन चरण, रेवती के दो चरण, हस्त, अनुराधा एवं रोहिणी के दो चरण शन्ति एवं पुष्टि के लिये पुण्यप्रद कहे जाते हैं। (अनुष्ठानप्र. पृ. 1-2)

पुनर्वसुद्वये स्वातौ त्र्युत्तरे श्रवण त्रये।
रेवतीद्वितये हस्तेऽनुराधा रोहिणीद्वये।।
शान्तिकं पौष्टिकं कर्म्म पुण्याहे कीर्त्तितं बुधः।। (अनुष्ठानप्र. पृ. 2)

स्थिर लग्न में विष्णुमन्त्र, चर लग्न में शिवमन्त्र तथा उभय स्वभाववाले लग्न में शक्तिमन्त्र की साधना उत्तम कही जाती है।[1]

स्थिर लग्नं विष्णुमन्त्रे शिवमन्त्रे चरं ध्रुवं।
द्विस्वभावगतं लग्नं शक्तिमन्त्रे प्रशस्यते।। (अनुष्ठानप्र. पृ. 2)

मन्त्रजप में सर्वत्र 'करन्यास' एवं 'हृदयादिन्यास' का प्रयोग किया जाता है। दोनों हाथों की दस अंगुलियों और दोनों हाथ के सामने तथा पीछे के भागों को क्रमशः मन्त्रोच्चारणपूर्वक परस्पर स्पर्श करने का नाम 'करन्यास' है। जैसे-

1) '.....**इति अंगुष्ठाभ्यां नमः**' ऐसा कहकर दोनों हाथों के अंगुष्ठों का परस्पर स्पर्श करें। अथवा दोनों अंगूठों को दोनों तर्जनी से स्पर्श करें।

2) '.....**इति तर्जनीभ्यां नमः**' ऐसा कहकर दोनों हाथों की तर्जनी अंगुलियों का परस्पर स्पर्श करें। अथवा दोनों अंगूठों से दोनों तर्जनियों का स्पर्श करें।

3) '.....**इति मध्यमाभ्यां नमः**' ऐसा कहकर दोनों हाथों की मध्यमा अंगुलियों का परस्पर स्पर्श करें। अथवा दोनों अंगूठों से दोनों मध्यमा अंगुलियों का स्पर्श करें।

4) '..... **इति अनामिकाभ्यां नमः**' ऐसा कहकर दोनों हाथों की अनामिका अंगुलियों का परस्पर स्पर्श करें। अथवा दोनों अंगूठों से दोनों अनामिका अंगुलियों का स्पर्श करें।

5) '..... **इति कनिष्ठिकाभ्यां नमः**' ऐसा कहकर दोनों हाथों की कनिष्ठिका

1. मेष, कर्क, तुला एवं मकर लग्न को चर; वृष, सिंह, वृश्चिक एवं कुम्भ लग्न को स्थिर तथा मिथुन, कन्या, धनु एवं मीन लग्न को उभय स्वभाववाला माना गया है।

अंगुलियों का परस्पर स्पर्श करें। अथवा दोनों अंगूठों से दोनों कनिष्ठिका अंगुलियों का स्पर्श करें।

6) '..... **इति करतलकर पृष्ठाभ्यां नमः**' ऐसा कहकर क्रमशः दोनों हाथों की हथेलियों और उनके पृष्ठ भागों का स्पर्श करें।

दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों से क्रमशः मन्त्रोच्चारणपूर्वक हृदय आदि अंगों के स्पर्श का नाम 'हृदयादिन्यास' है। इसे षडंगन्यास भी कहते हैं। जैसे –

1) '..... **इति हृदयाय नमः**' ऐसा कहकर दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों से हृदय का स्पर्श करें।

2) '..... **इति शिरसे स्वाहा**' ऐसा कहकर दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों से मस्तक का स्पर्श करें।

3) '..... **इति शिखायै वषट्**' ऐसा कहकर दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों से शिखा (चोटी) का स्पर्श करें।

4) '..... **इति कवचाय हुम्**' ऐसा कहकर दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों से बायें कंधे का और बायें हाथ की पाँचों अंगुलियों से दाहिने कंधे का स्पर्श करें।

5) '..... **इति नेत्रत्रयाय वौषट्**' ऐसा कहकर दाहिने हाथ की पाँचों अंगुलियों के अग्रभाग से दोनों नेत्रों का तथा ललाट के मध्य भाग का अर्थात् वहाँ गुप्तरूप से स्थित रहनेवाले तृतीय नेत्र (ज्ञाननेत्र) का स्पर्श करें।

6) '..... **इति अस्त्राय फट्**' ऐसा कहकर दाहिने हाथ को सिर के ऊपर से उलटा अर्थात् बायीं तरफ से पीछे की ओर ले जाकर दाहिनी तरफ से आगे की ओर ले आये तथा तर्जनी और मध्यमा इन दो अंगुलियों से बायें हाथ की हथेली पर ताली बजायें।

ऊपर खाली जगहों पर मन्त्रविशेष बोलना चाहिये। करन्यास एवं हृदयादिन्यास के मन्त्र एक ही होते हैं परन्तु 'करन्यास' में सर्वत्र अन्त में **नमः** का प्रयोग होता है जबकि हृदयादि अंगन्यास में 'हृदय के साथ **'नमः'**, शिर के साथ **'स्वाहा'**, शिखा के साथ **'वषट्'**, कवच के साथ **'हुम्'**, नेत्रत्रय के साथ **'वौषट्'** तथा अस्त्र के साथ **'फट्'** शब्द का प्रयोग होता है।[1]

दोपहरतक उपांशु अथवा मानसजप करना चाहिये तथा एक बार केवल रात को ही हविष्यान्न का भोजन करना चाहिये। मन्त्रजापक को अभ्यंग का प्रयोग किये बिना त्रिकाल स्नान करना चाहिये।[2] अर्थात् साबुन, उबटन आदि द्रव्यों का प्रयोग स्नान के लिये नहीं करना चाहिये।

---

1. **हृदयादिषु विन्यस्येदङ्गमन्त्राँस्ततः सुधीः। हृदयाय नमः पूर्वं शिरसे वन्हिवल्लभाम्।।**
शिखायै वषडित्युक्तं कवचाय हुमीरितम्। नेत्रत्रयाय वौषट् स्यादस्त्राय फडिति क्रमात्।।
(पुरश्चर्यार्णव पृ. 186 – 187)

2. उष्ण किये गये जल से स्नान नहीं करना चाहिये।
'त्यजेदुष्णोदकस्नानमनिवेदितभोजनम्।' (पुरश्चर्यार्णव पृ. 466)

इसी प्रकार किसी की निन्दा, पान आदि का सेवन तथा दिन में शयन नहीं करना चाहिये।

आमध्याह्नं जपं कुर्य्यादुपांशुं वाथ मानसम्।
हविष्यं निशि भुंजीत त्रिः स्नाय्यभ्यङ्गवर्जितः।।
..... निन्दां तांबूलं शयनं दिवा। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 7)

जप करने से पूर्व ऊर्ध्वपुण्ड्र या त्रिपुण्ड्र को धारण कर लेना चाहिये। क्योंकि सत्य, शौच, जप, होम, तीर्थ तथा देव-पूजन आदि सभी कर्म बिना त्रिपुण्ड्र आदि के व्यर्थ हो जाते हैं।

सत्यं शौचं जपो होमस्तीर्थं देवादिसेवनम्।
तस्य व्यर्थमिदं सर्वं यस्त्रिपुण्ड्रं न धारयेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 62)

अलग-अलग कार्यों के लिये अलग-अलग वस्त्र धारण करना अच्छा रहता है। उदाहरण के लिये शयन करने, देवार्चन, ईश्वर-दर्शन एवं लोक-व्यवसाय के समय अलग-अलग वस्त्रों का प्रयोग करना चाहिये। अर्थात् जपादि देवकर्म के लिये अलग से वस्त्र सुरक्षित कर देना चाहिये जिसे केवल जप के समय ही पहना जाय। रेशमी एवं ऊनी वस्त्र तो कई बार पहना जा सकता है जबकि अन्य वस्त्र एक बार पहनने पर ही अशुद्ध हो जाता है और उसे धोना पड़ता है।

अन्यदेव भवेद्वासः शयनीये नराधिप।।
अन्यद्रथ्यासु देवानामर्चायामन्यदेव हि।
अन्यच्च लोकयात्रायामन्यदीश्वर दर्शने।। (आचारेन्दुः पृ. 62)

यद्यपि जप, व्रत तथा होमादि देवकर्मों में मौन रहना चाहिये तथापि अगर वहाँ पर उत्तम द्विज(अर्थात् उत्तम ब्राह्मण) अथवा आध्यात्मिक गुरु का सहसा आगमन हो जाय तो उनका अभिवादन करने एवं कुशल-क्षेम पूछने में दोष नहीं होता।

जपकाले न भाषेत व्रतहोमादिकेषु च।
एतेष्वेवावसक्तस्तु यथा गच्छन्द्विजोत्तमः।।
अभिवाद्य ततो विप्रं योगं क्षेमं च कीर्तयेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 130)

होम, जप, देवार्चन तथा आचमन आदि कार्य मात्र एक वस्त्र पहनकर नहीं करना चाहिये। धोती के अलावा उत्तरीय अर्थात् चादर या एक गमछा ले लेना चाहिये।

होमदेवार्चनाद्यासु क्रियास्वाचमने तथा।
नैकवस्त्रः प्रवर्त्तेत द्विजवाचनके जपे।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 20)
स्नानं दानं जपं होमं स्वाध्यायं पितृतर्पणम्।
नैकवस्त्रो द्विजः कुर्याच्छ्राद्धभोजनसत्क्रियाम्।। (अचारेन्दुः पृ. 58)

धोती इस प्रकार पहननी चाहिये कि इसमें तीन कच्छ(लाँगें) लगाये जा सकें। एक लाँग पीछे की ओर लगायी जाती है, दूसरी नाभि के पास और तीसरी इससे बायीं ओर।

वामकुक्षौ च नाभौ च पृष्ठे चैव यथाक्रमम्।
त्रिकच्छेन समायुक्तो द्विजोऽसौ मुनिरुच्यते।। (आचारेन्दुः पृ. 58)

अर्थात् जिसमें नीचे का पल्ला पृष्ठ पर और आगे के पल्ले का ऊपर का हिस्सा नाभि के नीचे और नीचे का हिस्सा बायें पसवाड़े में लगाया जाता है ऐसी धोती बाँधनेवाले द्विज मुनि होते हैं। इसके अतिरिक्त ध्वजप्रयुक्त, ग्रन्थियुक्त और यवनों के समान दोनों पल्ले खुली हुई धोती देवकार्यों के लिये वर्जित है।

धोती के अलावा देवकार्य के लिये उत्तरीय(चादर अथवा गमछा) भी धारण करना आवश्यक है।

नित्यमुत्तरं वासः धार्यम्। (नित्यकर्म-पूजाप्रकाश पृ. 35)

व्रत, होम, जप, देवपूजा तथ संध्यादि में सर्वत्र आचमन की आवश्यकता होती है। अतः यहाँ पर आचमन के बारे में लिखा जाता है।

पूर्वदिशा, उत्तरदिशा अथवा ईशान कोण(उत्तर-पूर्व दिशा) में बिना कण्ठ एवं शिर को ढके बैठकर ठंढा तथा फेन आदि से रहित छाने एवं शुद्ध जल से अंगुष्ठ-कनिष्ठा मुक्त दाहिने हाथ से तीन बार मात्र हृदय, कण्ठ अथवा तालुतक जानेवाले जल की मात्रा का पान करना आचमन कहलाता है। संध्यादि विशेष कर्मों में मन्त्रपूर्वक[1] जल का पान किया जाता है।

कांसा, लोहा, टिन, सीसा एवं पीतल के बर्तन में रखे जल से आचमन करने पर भी व्यक्ति अशुद्ध ही रहता है। अर्थात् उपर्युक्त धातुओं के पात्र का जल आचमन के योग्य नहीं होता। आचमन के लिए ताँबे का पात्र उत्तम माना जाता है।

कांस्यायसेन पात्रेण त्रपुसीसकपित्तलैः।
आचान्तः शतकृत्वोऽपि न कदाचिच्छुचिर्भवेत्।।

(वीरमित्रोदयः आह्निकप्रकाशः पृ. 72 तथा मामूली अन्तर के साथ आचारेन्दुः पृ. 29)

इसी प्रकार चमड़े के बर्तन में रखे हुए जल से भी आचमन नहीं करना चाहिये।

सन्ध्याकार्ये पितृश्राद्धे वैश्वदेवे शिवार्चने।
यती च ब्रह्मचारी च नाचामेच्चर्मवारिणा।। (वीरमित्रोदयः आह्निकप्रकाशः पृ. 72)

दूसरों के आचमनपात्र से भी आचमन नहीं करना चाहिये।

आचमन का जल, फेन या बुदबुदों तथा दुर्गन्ध से रहित हो तथा मिट्टी, आदि घुले होने के कारण पानी का रंग बदला हुआ न हो। इसी प्रकार वर्षा का जल भी आचमन के लिये उपयुक्त नहीं होता।

---

1. सामान्य रूप से '**ॐ केशवाय नमः**, **ॐ नारायणाय नमः**, **ॐ माधवाय नमः**' इन तीन मन्त्रों से तीन बार आचमन करके '**ॐ हृषीकेशाय नमः**' इस मन्त्र को बोलकर हाथ धो लें।

विवर्णं गन्धवत्तोयं फेनिलं च विवर्जयेत्।

न वर्षधारास्वाचामेत्तथा.....। (वीरमित्रोदयः आह्निकप्र. पृ. 70)

आचमन करने के लिये दाहिने हाथ को धोकर उसकी तीन अंगुलियों को मिलाकर ऊपर की ओर सीधा करें और कनिष्ठा तथा अंगूठे को उन तीनों से अलग रखकर हथेली में जल डालें तथा उससे आचमन करें। अथवा दाहिने हाथ के पोरुओं को बराबर करके हाथ को गौ के कान जैसा बनाकर आचमन करें।

संहताङ्गुलिना तोयं गृहीत्वा पाणिना द्विजः।।

मुक्ताङ्गुष्ठकनिष्ठेन शेषेणाचमनं चरेत्। (आचारेन्दुः पृ. 29)

आयतं पर्वणां कृत्वा गोकर्णाकृतिवत् करम्।

ऐतेनैव विधानेन द्विजो ह्याचमनं चरेत्।। (व्रतपरिचय, गीताप्रेस, गोरखपुर पृ. 13)

जल में गीले वस्त्रों के साथ जप, आचमन तथा तर्पण करना चाहिये जबकि स्थल में सूखे वस्त्रों के साथ। अगर गीले वस्त्रों के साथ स्थल में जप, होम अथवा दान किया जाय तो उसका फल राक्षसों को प्राप्त हो जाता है।

आर्द्रवासा जले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम्।

शुष्कवासाः स्थले कुर्यात्तर्पणाचमनं जपम्।।

आर्द्रवासास्तु यः कुर्याज्जपहोमप्रतिग्रहान्।

सर्वं तद्राक्षसं विद्याद्बहिर्जानु च यत्कृतम्।। (आचारेन्दुः पृ. 13)

आचमन में तीन बार जल पीने के बाद हाथ धोकर दाहिने कान का स्पर्श करना चाहिये। अगर किसी कारणवश जल न मिले तो मात्र दाहिने कान का स्पर्श कर लें।[1]

त्रिः पित्वा हस्तं प्रक्षाल्य दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्। (आचारेन्दु पृ. 30)

संध्या, आचमन, जप तथा हवन आदि कर्मों के लिये अपना आसन, वस्त्र तथा कमण्डलु आदि का प्रयोग करना चाहिये। दूसरों का वस्त्र तथा आसनादि नहीं। क्योंकि वे दूसरों के लिये हर हालत में अपवित्र माने जाते हैं। शास्त्रों में कहा गया है–

आसनं वसनं शय्या जाया ऽप्त्यं कमण्डलुः।

शुचीन्यात्मन एतानि परेशामशुचीनि तु।। (वीरमित्रोदयः आह्निकप्र. पृ. 73)

---

1. **क्षुते निष्ठीवने सुप्ते परिधानेऽश्रुपातने।**

पञ्चस्वेतेषु चाऽऽचामेच्छ्रोत्रं वा दक्षिणंस्पृशेत्।। (आचारेन्दुः पृ. 31)

अर्थात् छींक आने पर, थूकने पर, सोकर उठने पर, वस्त्र पहनने पर तथा अश्रु गिरने पर आचमन करे अथवा दाहिने कान के स्पर्श से भी आचमन की विधि पूरी हो जाती है।

आचमन के लिये जल की कितनी मात्रा लें, इसके बारे में शास्त्रों का कथन है कि ब्राह्मण जल की उतनी ही मात्रा एक बार में ले जो उसके कण्ठ से नीचे तक (हृदयतक) पहुँच जाय, जबकि क्षत्रिय उतनी मात्रा ले जो मात्र कण्ठतक ही पहुँचे। वैश्य, शूद्र एवं स्त्रियों को उतनी मात्रा में जल लेना चाहिये जो मात्र तालुतक ही पहुँचे।

हृद्गामिभिर्जलैर्विप्रः क्षत्रियः कण्ठगामिभिः।
तौ पिबेत्तालुगाभिश्च विट्शूद्रौ चाङ्गना पुनः।। (वीरमित्रो. आह्निकप्र. पृ. 99)
अप्सु प्राप्तासु हृदयं ब्राह्मणः शुद्धिमाप्नुयात्।
राजन्यः कण्ठतालू च वैश्यशूद्रस्त्रियोऽपि च।। (वीरमित्रो. आह्निकप्र. पृ. 75)

शिर व कण्ठ को ढककर, बाल व चोटी को खोलकर तथा बिना पैर धोकर आचमन नहीं करना चाहिये। इसी प्रकार बिना आसन के आचमन एवं जप नहीं करना चाहिये।

शिरः प्रावृत्य कण्ठं वा मुक्तकच्छशिखोऽपि वा।
अकृत्वा पादयोः शौचमाचान्तोऽप्यशुचिर्भवेत्।। (वीरमित्रो. आह्निकप्र. पृ. 93)
नासनारूढचरण आचमेन्न जपेत् क्वचित्। (वीरमित्रोदयः आह्निकप्र. पृ. 94)

जप के पूरा हो जाने पर हवन-सामग्री के अनुरूप शास्त्रोक्त प्रमाण से वेदी बनावे अथवा विशेष परिस्थिति में ताँबे या मिट्टी का बना हुआ हवनकुण्ड स्थापित करे। कुश-कण्डिकाविधि के अनुसार अग्निस्थापन कर शास्त्रोचित विधि से उचित मात्रा में यथोचित द्रव्य का हवन करना चाहिये। हवन के द्रव्य एवं मन्त्र कामनाविशेष के अनुरूप नियत किये गये हैं। इसी प्रकार हवन के द्रव्यों की मात्रा भी मन्त्र के स्वरूप तथा मन्त्रों की जपसंख्या पर निर्भर करती है। सामान्यरूप से हवन-सामग्री में जौ की जितनी मात्रा हो उसकी आधी मात्रा चावल की, चावल की आधी मात्रा तिल की, तिल की आधी मात्रा के बराबर शक्कर(खॉड) की और शक्कर की आधी मात्रा घी मिलाने से हवन सामग्री तैयार हो जाती है।

यवार्धं तण्डुलाः प्रोक्तास्तण्डुलार्धं तिलाः स्मृताः।
तिलार्धं शर्कराः प्रोक्ता आज्यं भागचतुष्टयम्।। (धर्मसिन्धुः पृ. 406 पादटिप्पणी)

आनंदरामायण में इससे भिन्न श्लोक पाया जाता है। वहाँ पर कहा गया है कि तिल का आधा चावल, चावल का आधा जौ, जौ का आधा शक्कर और सबका आधा घी मिलाना चाहिये।

तिलार्धं तण्डुला देयास्तण्डुलार्धं यवास्तथा।
यवार्धं शर्कराः प्रोक्ताः सर्वार्धं च घृतं स्मृतम्।। (धर्मसिन्धुः पृ. 406 पादटिप्पणी)

उपर्युक्त मतान्तर की स्थिति में जिस क्षेत्र में जिस मत का प्रचलन हो उसे वही पालन करना चाहिये।

इस सामग्री में पंचमेवा, भोजपत्र तथा चंदन का बुरादा आदि मिलाना चाहिये। कामना भेद से कई प्रकार के द्रव्यों से हवन करना पड़ता है। जैसे बिल्वफल, खीर, सरसों, दूध, दही, घी, गिलोय, दूर्वा आदि। हवन की समिधाओं(लकड़ियों) में अर्जुन, पलाश, खैर, पीपल, वट, शमी, उदुम्बर(गूलर), आक, अपामार्ग, दूर्वा, कुश, बिल्व, चन्दन, आम, साल, पाकड़ तथा देवदार आदि का प्रयोग करना चाहिये।

शमीपलाशन्यग्रोधप्लक्षवैकङ्कतोद्भवाः।
अश्वत्थोदुम्बरौ बिल्वश्चन्दनस्सरलस्तथा।
सालश्च देवादारुश्च खदिरश्चैव यज्ञियाः।।
.....।
अपामार्गार्कदूर्वाश्च कुशाश्चेत्यपरे विदुः।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 29)

सूर्यादि ग्रहों की समिधायें क्रम से इस प्रकार हैं- अर्क, पलाश, खदिर(खैर), अपामार्ग, पीपल, गूलर, शमी, दूब और कुश।

समिधाओं की मोटाई अँगूठे से अधिक नहीं होनी चाहिये। उनकी लम्बाई दस से बारह अंगुलतक हो। वे सीधी हों, वे छिलके सहित हों, कीड़ों या घुन द्वारा दूषित न हों, वे शाखा एवं पत्तियुक्त न हों, वे टेढ़ी न हों, अधिक लम्बी अथवा अधिक पतली एवं छोटी न हों।

नाङ्गुष्ठादधिका ग्राह्या समित्स्थूलतया क्वचित्। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 29)
सत्वचः समिधः कार्या ऋजुश्लक्ष्णसमास्तथा।
शस्ता दशाङ्गुलास्तास्तु द्वादशाङ्गुलिकास्तथा।। (आचारेन्दुः पृ. 101)
विशीर्णा द्विदला ह्रस्वा वक्रा स्थूला कृशाद्विधा।
कृमिविद्धा च दीर्घा च निस्त्वक्च परिवर्जिता।।
विशीर्णा विदला ह्रस्वा वक्रा बहुशिराः कृशाः।
दीर्घाः स्थूला घुणैर्जुष्टाः कर्मसिद्धिविनाशकाः।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 29)

द्रवित पदार्थों की आहुति के लिये स्रुवा का तथा अन्य द्रव्यों के लिये हाथ का प्रयोग करना चाहिये।

द्रवं हविः स्रुवेणैव पाणिना कठिनं हविः। (आचारेन्दुः पृ. 101)

स्रुवा एक हाथ लम्बा तथा खैर आदि लकड़ियों से निर्मित होना चाहिये। स्रुवा का अग्रभाग अंगूठे के समान आकृतिवाला परन्तु तीन गुना बड़ा और चम्मच की तरह गहरा होना चाहिये। खैर के अभाव में शमी की लकड़ी का तथा शमी के अभाव में किसी अन्य यज्ञीयवृक्ष का स्रुवा बनाया जा सकता है। खैर की लकड़ी के स्रुवा से सभी कामनाओं की सिद्धि होती है।

खादिरादेः स्रुवः कार्यो हस्तमात्रप्रमाणतः।

अङ्गुष्ठपर्वरवातं तत्त्रिभागं दीर्घपुष्करम्।।
शमीमयः स्रुवः कार्यस्तदलाभेऽन्यवृक्षजः।
खादिरस्तु स्रुवः कार्यः सर्वकामार्थसिद्धये।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 29 – 30)

स्रुवा की लम्बाई को पाँच भागों में बाँटकर उसके द्वितीय एवं चतुर्थ भाग को पकड़कर आहुति देनी चाहिये। स्रुवा अंगुलियों को उत्तानकर पकड़ना चाहिये। इसी प्रकार अंगुलियों को उत्तान करके ही उनसे आहुति देनी चाहिये।(आचारेन्दुः पृ. 102)

द्रवद्रव्यस्य होमे तु उत्तानाङ्गुलिभिः स्मृतम्।।
स्रुवस्याप्युत्तानाङ्गुलिभिरेव धारणम्। (आचारेन्दुः पृ. 102)

(संक्षिप्त होमकर्म के लिये) स्रुवा के अभाव में पलाश अथवा पीपल के पत्ते को बीच से पकड़कर हवि को यज्ञाग्नि में डालना चाहिये। पत्ते छिद्ररहित, स्वस्थ एवं सुन्दर होने चाहिये।

तदभावे पलाशस्य पर्णाभ्यां हूयते हविः।
पलाशपर्णाभावे तु पर्णैर्वा पिप्पलोद्भवैः।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 30)
पलाशपत्रैर्निश्छिद्रै रुचिरौ स्रुक्स्रुवौ मतौ। (धर्मसिन्धुः पृ. 700 पादटिप्पणी देखें)

हवन के लिये प्रयुक्त होनेवाले घी के बारे में बताया गया है कि गाय का उत्तम भैस का मध्यम तथा बकरी आदि का अधम माना जाता है।

उत्तमं गोघृतं प्रोक्तं मध्यमं महिषीभवम्।
अधमं छागलीजातं तस्माद्गव्यं प्रशस्यते।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 30)

बिना प्रोक्षण के(जल छिड़के) समिधा(इन्धन) को अग्नि में न डालें (**नाप्रोक्षितमिन्धनमग्नावादध्यात्।** धर्मसिंधुः पृ. 698)। इसी प्रकार जिस मन्त्र और सूत्र का स्वर न मालूम हो, उसको बिना स्वर के ही पढ़ना चाहिये। अपने मन से स्वर का प्रयोग नहीं करना चाहिये। होम में मन्त्र के आदि में प्रणव('ॐ') तथा अन्त में 'स्वाहा' लगाना चाहिये।

अविज्ञातस्वरो मन्त्रः सौत्र एकश्रुतिर्भवेत्।
होमेषु मन्त्रं स्वाहान्तं प्रणवाद्यं च कारयेत्।।

(धर्मसिन्धुः पृ. 698 तथा अविज्ञात स्वर के संबंध में आचारेन्दुः पृ. 15 पर भी इसी प्रकार का श्लोक है।)

होम की पाँच मुद्रायें मानी गयीं हैं। अर्थात् पाँच तरीके से यज्ञकुण्ड में आहुतियाँ डालनी चाहिये। ये मुद्रायें हैं– मयूरी, कुक्कुटी, हंसी, सूकरी तथा मृगी। तर्जनी को छोड़कर बाकी चार अँगुलियों से हथेली को नीचे की तरफ रखकर जो आहुति दी जाती है वह मयूरीमुद्रा कहलाती है। हथेली को ऊपर की ओर रखते हुए सभी(चारों) अंगुलियों के साथ अँगूठे की मदद से सामग्री ग्रहण कर आहुति देना कुक्कुटीमुद्रा कहलाती है। कनिष्ठा को छोड़कर अँगूठेसहित बाकी चारों अँगुलियों से आहुति देना हंसीमुद्रा कहलाती है। पाँचों अँगुलियों को एक ही धरातल पर इकट्ठा करके हथेली

को ऊपर रखते हुए अँगूठे को ऊपर की ओर तथा शेष अँगुलियों को नीचे की ओर फैलाते हुए आहुति देना सूकरीमुद्रा कहलाती है। सूकरी एवं कुक्कुटीमुद्रा में अन्तर यह है कि कुक्कुटी में अँगूठे की मदद से सामग्री पकड़ी एवं अग्नि में डाली जाती है, जबकि सूकरी में पाँचों अँगुलियों को एक ही धरातल में रखते हुए सामग्री उठायी जाती है। मध्यमा, अनामिका एवं अँगूठे की मदद से सामग्री को पकड़ कर जब आहुति डाली जाती है तो वह मृगीमुद्रा कहलाती है।(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 32)

फल-मूल के यजन के लिये मयूरीमुद्रा, मारण आदि के लिये कुक्कुटी, वशीकरण एवं उच्चाटन हेतु सूकरी तथा शान्ति और पौष्टिक कार्यों के लिये हंसी तथा मृगीमुद्रा उत्तम होती है।(अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 33)

फलमूलयजौ ज्ञेया मुद्रा श्रेष्ठा शिखण्डिनी।
जारमारणकर्तव्ये कुक्कुटी तु प्रकीर्तिता।।
वश्योच्चाटनपूर्वाणां कर्मणां सूकरी मता।
शान्तिके पौष्टिके कार्ये मृगी हंसी तथोत्तमा।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 32-33)

मन्त्रमहोदधिः(अनुवादक शुकदेव चतुर्वेदी, चौखम्बा संस्कृत सीरीज ऑफ़िस, वाराणसी, 1981) की प्रस्तावना में(पृ. 23) कहा गया है कि शान्तिक-पौष्टिक कर्मों के हवन में मृगीमुद्रा से, वशीकरण आदि में हंसीमुद्रा से तथा स्तम्भन, विद्वेषण, उच्चाटन एवं मारण में सूकरीमुद्रा से आहुतियाँ डालनी चाहिये।

आहुति के प्रमाण की चर्चा करते हुए कहा गया है कि घृत आदि एक कर्ष, लावा एक मुट्ठी, अन्न एक ग्रास के बराबर और कन्दों का आठवाँ भाग प्रयोग करना चाहिये। तिल, सत्तू और कण आदि मृगीमुद्रा के प्रमाण से ग्रहण करें।

कर्षप्रमाणमाज्यादि लाजा मुष्टिमिता मताः।
अन्नं ग्राससमं ग्राह्यं कन्दानामष्टमोंशकः।।
तिलसक्तुकणादीनां मृगीमुद्राप्रमाणतः। (धर्मसिन्धुः पृ. 698)

'अनुष्ठानप्रकाशः' पृ. 33 पर शाकल्य के प्रमाण की चर्चा करते हुए बताया गया है कि इसमें तिल का अनुपात अन्यों से ज्यादा होना चाहिये। वहीं पर होमद्रव्यों की आहुति के प्रमाण के बारे में बताया गया है कि घी एक कर्ष(16 माशा); दूध, पंचगव्य, मधु और दूध में पकाया अन्न सीपी के बराबर; लावा एक मुट्ठी; शक्कर तथा गुड़ आधापल; चरु आधा ग्रास; इक्षु एक पर्व की लम्बाईतक; पत्र, पुष्प, पुआ-पूरी आदि, एक-एक; केला, संतरा आदि फल एक-एक; पनस(कटहल) का दसवाँ भाग; नारियल का आधाभाग; बिल्वफल का तीसरा हिस्सा; कपित्थ(कैथ) का तीसरा हिस्सा तथा समिधा दस अंगुल की होनी चाहिये।

हवन की पूर्णाहुति के बाद स्रुवा या स्रुच आदि से भस्म को ग्रहण कर शिर एवं कण्ठ आदि

में लगावें।

ऐशान्यामाहरेद्भस्म स्रुचा वाथ स्रुवेण वा।
अङ्कनं कारयेत्तेन शिरःकण्ठांसकेषु च।। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 34)

आमतौर पर होम की संख्या का दशांश तर्पण एवं तर्पण का दशांश मार्जन किया जाता है। तर्पण के लिये देवता का आवाहन कर उसके मन्त्र(जिसका जप किया गया है) को पढ़कर अन्त में देवता के नाम में द्वितीया विभक्ति का प्रयोग करते हुए **'तर्पयामि नमः'** बोलें। तर्पण जल से किया जा सकता है। अभीष्ट संख्यातक बार-बार इसी प्रकार **'तर्पयामि नमः'** बोलते रहें।

मार्जन या अभिषेक के लिये पूर्वोक्त की भाँति द्वितीया विभक्ति के आगे **'अभिसिञ्चामीति'** अथवा **'अभिसिञ्चामीत्यभिषेके'** बोले परन्तु द्वितीया विभक्ति से पहले 'नमः' लगाकर।

एवं होमं समाप्याथ तर्पयेद्देवतां जलैः।
आवाह्य तद्दशांशेन तर्पणादभिषेचनम्।।
तर्पयामि नमश्चेति द्वितीयान्तेष्टपूर्वकम्।
मूलान्ते तु पदे देयं सिञ्चामीत्यभिषेचनम्।। (आचारेन्दुः पृ. 137)

उदाहरण के लिये नवार्णमन्त्र को लें। इस सन्दर्भ में तर्पण एवं अभिषेक क्रमशः इस प्रकार होंगे। **'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे चण्डिकां तर्पयामि नमः'** तथा **'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे नमश्चण्डिकामभिषिञ्चामीत्यभिषेके'** अथवा **'ॐ ऐं ह्रीं क्लीं चामुण्डायै विच्चे चण्डिकामभिषिञ्चामिति।'** अभिषेक अथवा मार्जन करते समय जल को अपने सिर पर छिड़कते रहें। अथवा देवता के सिर पर(आचारेन्दुः पृ. 137)। मार्जन के लिये कुशा का प्रयोग करें अथवा अंजलि का। तर्पण सदैव हाथ की अंगुलियों के अग्रभाग(देवतीर्थ) से करें। अर्थात् तर्पण का जल अंगुलियों के अग्रभाग से होकर तर्पणपात्र में गिरे।

अभिषेक आदि समस्त क्रियाओं के समाप्त होने पर आचार्य को दक्षिणा का तत्काल ही भुगतान कर देना चाहिये। क्योंकि एक रात बीतने पर वह दान दुगुना हो जाता है और इसी तरह उत्तरोत्तर बढ़ता जाता है। (अनुष्ठानप्रकाशः पृ. 34 तथा धर्मसिन्धुः पृ. 641)

(उपर्युक्त लेख नित्यकर्म-पूजाप्रकाश, आचारेन्दुः, अनुष्ठानप्रकाशः, धर्मसिन्धुः तथा वीरमित्रोदयः आह्निकप्रकाशः आदि ग्रन्थों पर आधारित है।)

❀❀❀❀❀❀